वैशेषिक दर्शन में पदार्थ-निरूपण

डॉ. शशिप्रभा कुमार

प्रास्ताविक

भारतीय शास्त्र परम्पराओं के उद्भव, समुन्मेष तथा विकास का ऐतिह्य चार युगों में विस्तारित रहा है। वैदिक काल से विक्रम-पूर्व प्रथम सहस्राब्दी तक उद्भवकाल, विक्रम-पूर्व प्रथम सहस्राब्दी समुन्मेषकाल, विक्रम संवत्सर की प्रथम सहस्राब्दी और द्वितीय सहस्राब्दी तथा उसका पश्चाद्वर्ती अद्यावधि काल व्याख्यानकाल कहा जा सकता है। इन चारों युगों में विविध शास्त्र परम्पराएँ अपने आप को नाना रूपों में संस्कारित और प्रत्यग्र बनाती रही हैं। इन शास्त्र परम्पराओं में आस्तिक दर्शनों के अन्तर्गत षड्दर्शनों के विविध सम्प्रदायों व प्रस्थानों का अपनी वैचारिक समृद्धि तथा तत्त्वबोध की दृष्टि से असाधारण महत्त्व है। इनमें भी वैशेषिक दर्शन का पदार्थ-विचार अपनी वस्तुनिष्ठता व वैज्ञानिकता के कारण विगत दो हज़ार वर्षों से निरन्तर विचारणीय व प्रासङ्गिक बना रहा है। इस पर एक स्वतन्त्र व प्रामाणिक समग्र अध्ययन भी उतना ही आवश्यक था। प्रो० शशिप्रभा कुमार का शोधग्रन्थ *वैशेषिक दर्शन में पदार्थ-निरूपण* इस दिशा में एक स्तुत्य प्रयास है। विदुषी ने इस ग्रन्थ में वैशेषिक सूत्र व प्रशस्तपाद भाष्य से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक के विपुल कालखण्ड में वैशेषिक दर्शन में इस विषय पर हुए विचार-मन्थन का नवनीत वर्णन प्रस्तुत किया है। अपने प्रथम संस्करण के प्रकाशन के पश्चात् से अभी तक यह ग्रन्थ एक दुर्लभ विशेषज्ञता के मानक के रूप में विद्वत्समाज में समादृत रहा है तथा शङ्कर पुरस्कार, भारती मिश्र पुरस्कार और स्वामी प्रणवानन्द पुरस्कार जैसे दार्शनिक साहित्य के लिए प्रदान किए जाने वाले सर्वोच्च पुरस्कारों से भी विभूषित हुआ है।

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान इसके पुनः प्रकाशन से गौरवान्वित हुआ है। आशा है इस ग्रन्थ का यह नवीन संस्करण जिज्ञासु अध्येताओं के लिए उपादेय होगा।

राधावल्लभ त्रिपाठी

पुरोवाक्

कणादेन तु सम्प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत्।

भारतीय दर्शन-परम्परा में वैशेषिक दर्शन का अन्यतम स्थान है। साङ्ख्य-सूत्रकार ने 'त्रिविधदु:खात्यन्तनिवृत्ति' को ही 'अत्यन्त-पुरुषार्थ' कहा, योग-सूत्रों में 'चित्तवृत्तियों के निरोध' का प्रकार वर्णित किया गया, जैमिनि ने 'धर्म की जिज्ञासा' को अपने शास्त्र का प्रतिपाद्य रखा तथा ब्रह्मसूत्रों में 'ब्रह्म की जिज्ञासा' की ही प्रतिज्ञा की गई – इसलिए इन सब शास्त्रों में 'दर्शन' को सामान्य व्यक्ति के अनुभव से जोड़ने का कोई प्रयास दृष्टिगत नहीं होता। ये 'मुमुक्षु' अथवा 'तत्त्वज्ञानी' को अपने शास्त्र का अधिकारी बताते हैं। वैशेषिककार ने भी 'धर्म की व्याख्या' को ही अपने शास्त्र का प्रतिपाद्य कहा, किन्तु वह धर्म केवल नि:श्रेयस-साधक नहीं, अभ्युदयाधायक भी है, अत: उनका शास्त्र सामान्य जन के लिए दुरूह नहीं, उपयोगी सिद्ध हुआ। वैशेषिक दर्शन में विविध विश्व के दृश्यमान तत्त्वों के साधर्म्य एवं वैधर्म्यपूर्वक तत्त्वज्ञान को साध्य बताया गया । अन्य दर्शनों में तत्त्वज्ञान को साधन कहा गया था, अत: वहाँ 'ज्ञान' की सत्ता मानो सिद्ध ही मान ली गई, परन्तु यहाँ ज्ञान को भी साध्य माना गया। इस प्रकार, वैशेषिक दर्शन में शास्त्र के साथ-साथ विज्ञान की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है; यही इसके वैशिष्ट्य का आधार है।

वैशेषिक का समानतन्त्र न्याय-दर्शन भी इसके महत्त्व का आधायक सिद्ध हुआ; वैशेषिक का उत्कर्ष वैचारिक विशिष्टता में था तो उस विषय-प्रतिपादन की प्रक्रिया का वैशिष्ट्य न्याय-दर्शन की अमूल्य देन है, जिसका प्रयोग स्वयं न्याय-सिद्धान्तों के खण्डन हेतु अन्य प्रतिपक्षी सम्प्रदायों ने भी किया। अत: 'प्रमाण' एवं 'प्रमेय' दोनों ही पक्षों का समन्वित संयोग होने से न्याय-वैशेषिक-परम्परा एक ऐसी समग्र एवं सर्वजनग्राह्य दर्शन-धारा के रूप में प्रसूत हुई, जिसका प्रवाह अद्यावधि निर्बाध एवं अखण्ड है। इस प्रकार, भारतीय दर्शन-परम्परा के इतिहास में न्याय-वैशेषिक का महत्त्व अप्रतिम है। इसे अन्य शब्दों में इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है कि जीव, जगत् एवं ईश्वर में से जगत् की प्रधानतया व्याख्या एवं उसी के सन्दर्भ में जीव और ईश्वर का विवेचन इस दर्शन-सम्प्रदाय का मूल योगदान है; अत: यह अध्यात्मविद्या नहीं है, भूतविद्या अथवा पदार्थशास्त्र है।

'वैशेषिक' पद 'विशेष' से व्युत्पन्न है और इस नामकरण का आधार यह है कि विश्व की सभी वस्तुओं का वैशिष्ट्य ही उनका वास्तविक स्वरूप है। तदनुसार वैशेषिक दर्शन

विषयानुक्रम

प्रास्ताविक – गंधावल्लभ त्रिपाठी vii

द्वितीय संस्करण का प्राक्कथन – शशिप्रभा कुमार ix

सौवस्तिकम् – पद्मभूषण पं. पट्टाभिराम शास्त्री xi

Blessings – Prof. Gaurinath Shastri xiii

शुभाशंसा – प्रो. वाचस्पति उपाध्याय xv

पुरोवाक् – शशिप्रभा कुमार xvii

आभार – शशिप्रभा कुमार xxiii

सङ्केत-सारणी xxix

Abbreviations xxxiii

१. **प्रथम अध्याय : विषय-प्रवेश** 1

भारतीय दर्शन-परम्परा में वैशेषिक दर्शन का स्थान, 'वैशेषिक' नामकरण का आधार, वैशेषिक दर्शन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, वैशेषिक साहित्य-परिचय।

२. **द्वितीय अध्याय : पदार्थ-परिकल्पना** 18

पदार्थ – सामान्य लक्षण, पाश्चात्य दर्शन में पदार्थ-परिकल्पना, वैशेषिक पदार्थ-परिकल्पना का वैशिष्ट्य, सप्तपदार्थ-सिद्धान्त, सप्तपदार्थवाद का क्रमिक विकास, पदार्थ-सङ्ख्या : विप्रतिपत्तियाँ, सप्तातिरिक्त पदार्थों का खण्डन, वैशेषिक पदार्थ-निरूपण का महत्त्व।

३. **तृतीय अध्याय : 'द्रव्य' – सामान्य परिचय** 39

द्रव्य एवं द्रव्यत्व जाति की सिद्धि, द्रव्य का लक्षण, द्रव्य-भेद, द्रव्य-साधर्म्य, नवद्रव्यसिद्धान्त, तम का द्रव्यत्व-खण्डन, द्रव्य-सङ्ख्याविषयक विप्रतिपत्तियाँ व सिद्धान्तमतानुसार उनका समाधान, निष्कर्ष।

४. **चतुर्थ अध्याय : अनित्य द्रव्य –** 63
(पृथिवी, जल, तेज, वायु)

पृथिवी की सिद्धि, पृथिवी का लक्षण, पृथिवी के गुण, पृथिवी के भेद

पदार्थ-निरूपण का अन्तिम चरण है। पदार्थों के मध्य परस्पर सम्बन्ध को 'संयोग' गुण से व्याख्यात नहीं किया जा सकता था क्योंकि यह केवल दो पहले से असम्बद्ध वस्तुओं को ही संयुक्त कर सकता है – अत: समवाय नामक आन्तरिक सम्बन्ध रूप एक षष्ठ पदार्थ की स्वीकृति हुई होगी।[४६]

अत: स्पष्ट होता है कि क्रमश: द्रव्य से समवाय-पर्यन्त छ: पदार्थों का विकास होने पर पारम्परिक वैशेषिक-दर्शन की पदार्थ-परिकल्पना तो सम्पूर्ण हो गई, किन्तु अभी भी ऐसी अनेक वस्तुएँ थीं, जिनके 'पदार्थत्व' की सिद्धि के प्रयास होते रहे। तथापि, वैशेषिक दार्शनिक ने उन सब प्रयासों का युक्तिपूर्वक खण्डन कर यही प्रतिपादित किया कि वस्तुत: उक्त छ: ही मूल पदार्थ हैं। यह विकास-प्रक्रिया मतिचन्द्र की *दशपदार्थी* में सर्वथा सुस्पष्ट होती है चूँकि वहाँ शक्ति, अशक्ति, सामान्य-विशेष तथा 'अभाव' नाम के चार अन्य पदार्थ भी स्वीकार किए गए हैं। इनमें से प्रथम तीन का तो सिद्धान्तमत में प्रचार न हो सका, किन्तु 'अभाव' के पदार्थत्व की चर्चा मतिचन्द्र के काल से आरम्भ होकर दसवीं शताब्दी तक चलती ही रही, जब तक कि वैशेषिक दर्शन में उसे सप्तम पदार्थ के रूप में स्वीकार नहीं कर लिया गया। इस प्रकार, वैशेषिक-दर्शन-सम्मत सातों पदार्थों के विकास-क्रम का ऐतिहासिक रीति से विश्लेषण करने के उपरान्त हम कह सकते हैं कि एक बार पदार्थों की सङ्ख्या निर्धारित हो जाने पर उनके लक्षणों, भेदों, उपभेदों आदि की चर्चा वैशेषिक दर्शन-परम्परा को समृद्ध बनाती रही।

पदार्थ-सङ्ख्या : विप्रतिपत्तियाँ

(क) अभाव

वैशेषिक पदार्थ-सिद्धान्त के विकास-क्रम पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि कणाद एवं प्रशस्तपाद ने पदार्थों की सङ्ख्या छ: ही मानी थी किन्तु 'अभाव' नामक एक सातवाँ पदार्थ भी परवर्ती काल में इस सूची में जोड़ दिया गया। श्रीधराचार्य एवं उदयनाचार्य आदि परवर्ती लेखकों ने तो यह भी सिद्ध करने की चेष्टा की है कि स्वयं कणाद को 'अभाव' की पृथक् सत्ता मान्य थी किन्तु उन्होंने इसका पृथक् निर्देश इसलिए नहीं किया कि यह भाव के परतन्त्र ही है।[४७] इस विषय में फ्राउवाल्नर का भी यही मत है कि 'अभाव' की समस्या आरम्भ से ही वैशेषिक दार्शनिक के समक्ष रही होगी, क्योंकि इसका उद्भव ज्ञान से हुआ है। तात्पर्य यह है कि एक अविद्यमान वस्तु का ज्ञान ही यह सिद्ध कर देता है कि अभाव को भी एक पृथक् पदार्थ मानना चाहिए। अत: 'अभाव'-विषयक चर्चा आरम्भ से ही वैशेषिक-परम्परा में अनुस्यूत रही। यह इस तथ्य से भी प्रमाणित हो जाता है कि छठी शताब्दी के वैशेषिक दार्शनिक मतिचन्द्र की *दशपदार्थी* में 'अभाव' को भी एक पृथक् पदार्थ माना गया है। यद्यपि यह भी सत्य है कि मतिचन्द्र का मत सिद्धान्तरूप से मान्य

---

४६. वही, पृ. १०६

४७. *न्या. क.*, पृ. १८ तथा *किरणा.*, पृ. ६